विज्ञान और उसकी शिक्षा

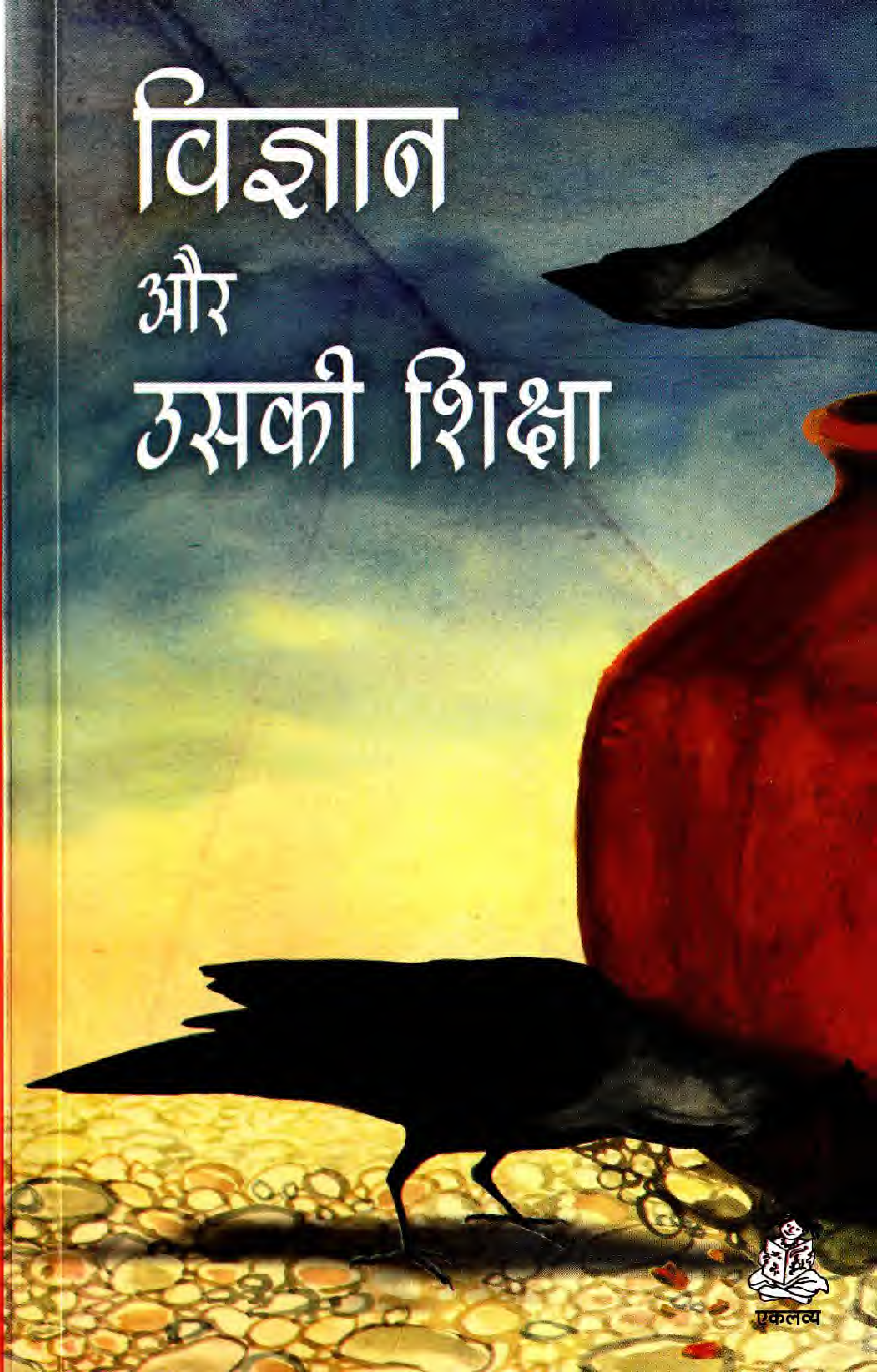

एकलव्य

विज्ञान की प्रकृति क्या है? शिक्षा में [illegible] की भूमिका क्या है? विज्ञान शिक्षण की [illegible] पद्धति क्या है? समाज का जो [illegible] चाहिए [illegible] शिक्षा के लिए [illegible] है? यह [illegible] जुड़े ऐसे ही कई बुनियादी [illegible] तलाशती है। [illegible] लेने वाले लेखों के [illegible] अनुभवों के धरातल से विज्ञान शिक्षण [illegible] संघर्षों को उकेरते हैं। इन [illegible] लेखों में होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम के शिक्षकों, प्रशिक्षकों, शोधकर्ताओं के प्रयासों के अलावा देश के कई ऐसे लोगों की कोशिशें और विचार प्रस्तुत हैं जिन पर विज्ञान शिक्षा की नई राहें बनाने की धुन सवार रही है।

एकलव्य
मूल्य: ₹ 200.00
9 789381 337677

21

बच्चों के साथ विज्ञान

अनीश मोकाशी

मैं तीन महीने तक कोयम्बतूर के निकट आनैकट्टी में स्थित विद्या वनम् नाम के एक वैकल्पिक स्कूल में विज्ञान शिक्षक था। विद्या वनम् श्रीमती प्रेमा रंगाचारी द्वारा संचालित एक अँग्रेज़ी माध्यम स्कूल है जो एनसीईआरटी के पाठ्यक्रम का अनुसरण करता है। स्कूल का शिक्षण-दर्शन है कि कक्षाएँ प्रयोग-आधारित हों और साथ-साथ वह विद्यार्थियों को *नैशनल ओपन स्कूलिंग* (राष्ट्रीय मुक्त स्कूली शिक्षा) की बोर्ड परीक्षाओं के लिए तैयार करता है। आनैकट्टी से ऊटी के पहाड़ दिखाई देते हैं, और यह नीलगिरी पर्वतमाला पर से गुज़रने वाले हाथियों के एक महत्वपूर्ण गलियारे में स्थित है। उसके पास में ही सालिम अली पक्षी विज्ञान एवं प्रकृति विज्ञान केन्द्र तथा नीलगिरी जीव-मण्डल आरक्षित क्षेत्र हैं। स्कूल के बच्चे आसपास के गाँवों से हैं और अपने परिवार में औपचारिक शिक्षा पाने वालों की पहली पीढ़ी हैं। उनमें से अधिकांश इरूला जनजाति समुदाय के हैं। स्कूल का माहौल बच्चों और शिक्षकों के बीच मुक्त संवाद का है, और बच्चों का श्रीमती रंगाचारी से भी अत्यन्त अपनत्व भरा रिश्ता है (उनको वे 'पाटी' यानी दादी/नानी कहकर सम्बोधित करते हैं)। मैं यहाँ विद्या वनम् स्कूल के बच्चों के साथ हुए अपने कुछ ऐसे अनुभव साझा

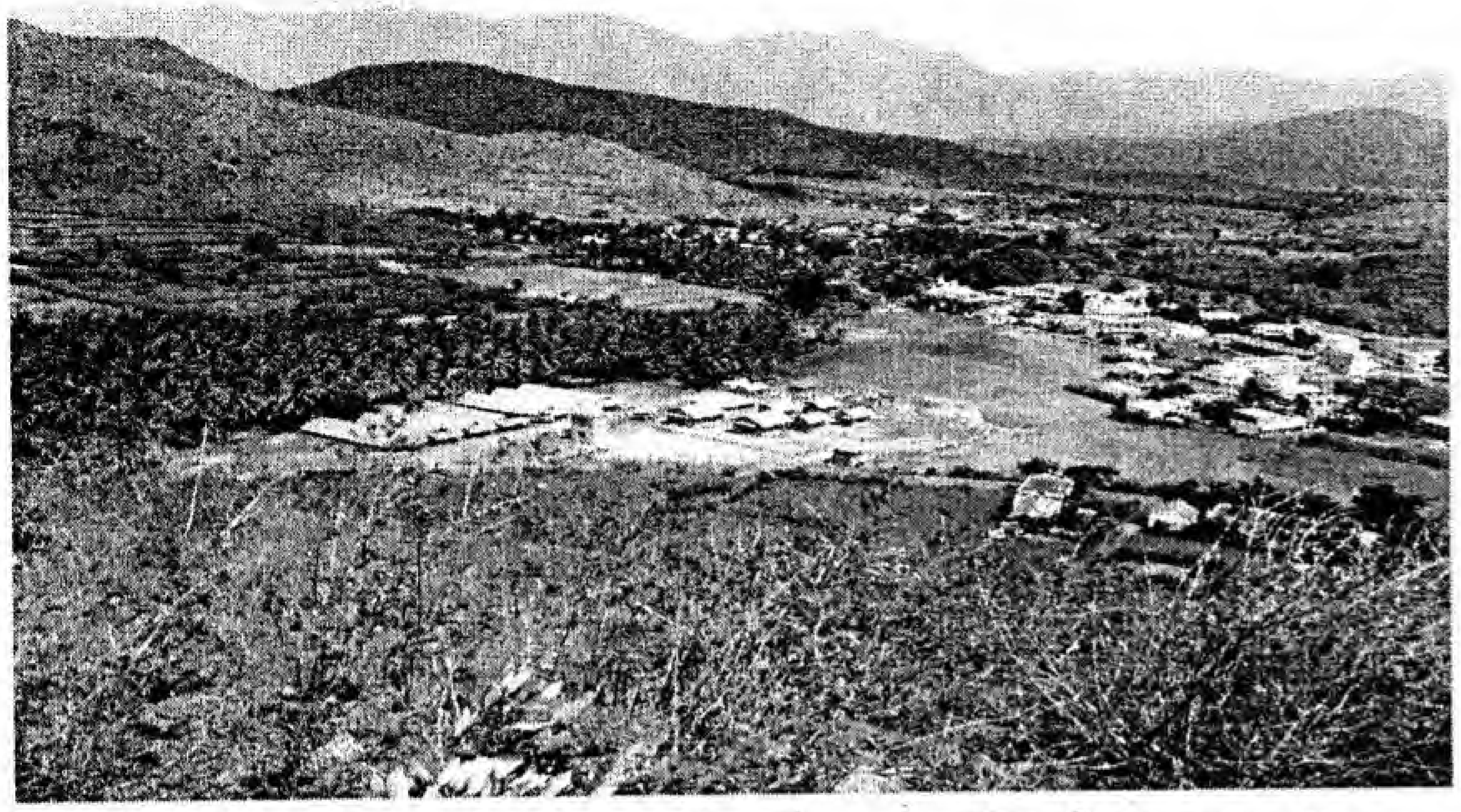

चित्र- विद्या वनम् स्कूल

करना चाहता हूँ जिन्होंने मुझे बच्चों तथा विज्ञान के बारे में प्रचलित कुछ आम धारणाओं पर पुनर्विचार करने के लिए मजबूर किया।

भौतिकी का एक विद्यार्थी

आईआईटी, मुम्बई, में इंजीनियरिंग भौतिकी में बी टेक कर रहे एक विद्यार्थी के रूप में मुझे लगता था कि मेरी पढ़ाई टुकड़ों-टुकड़ों में हो रही थी। हमारे लिए एक ही सेमिस्टर में बहुत सारी सामग्री इकट्ठी कर दी गई थी, और विभिन्न विषयों के पाठ्यक्रमों में परस्पर तालमेल नहीं दिखाई पड़ता था, जैसे कि उनमें से प्रत्येक किसी अलग संसार की बात कर रहा हो। हम विद्यार्थियों में तैयारी नहीं थी कि खुद ही उनके सम्बन्धों को खोज सकते और उन सबका व्यापक सन्दर्भ समझ सकते। हमें ऐसा लगता था कि ज्ञान के संचित किए गए समस्त भण्डार के पहाड़ के शिखर पर चढ़ चुकने के बाद ही हमें कुछ रोचक करने का या उसकी झलक पाने का मौका मिलेगा। कुछ पाठ्यक्रमों को छोड़कर, हमें सीखने की खोजपूर्ण प्रक्रिया के लिए अवसर तभी मिलता था जब हम किसी परियोजना पर काम कर रहे होते थे।

मैं *एनवॉयरनमेंट जस्टिस* (पर्यावरण से मिलने वाले लाभ और उसके भार को समाज में न्यायपूर्वक बाँटने) के आन्दोलन से भी सक्रिय रूप से जुड़ा हुआ था, और आदिवासी लोगों पर हो रहे सामाजिक तथा पर्यावरण सम्बन्धी अन्याय एवं मानवीय गरिमा से सर्वांग रूप से उन्हें वंचित किए जाने की प्रक्रिया को

स्वयं अपनी आँखों से देख चुका था। इस अनुभव तथा अपने शिक्षा संस्थान के शान्त, सौम्य माहौल के बीच सामंजस्य बिठाना मेरे लिए कठिन था।

अमरीका में स्नातकोत्तर अध्ययन के दौर ने – जिसमें अध्ययन की गहन तथा रोचक पाठ्यचर्या, वहाँ की लोकतांत्रिक व्यवस्था, यदा-कदा पढ़ाने व बहुत निम्न तापक्रमों पर द्वि-आयामी इलेक्ट्रॉन तंत्रों पर प्रयोग करते हुए पूर्णकालिक शोधकार्य करने के अनुभव शामिल थे – मेरे जीवन को काफी समृद्ध बनाया। शोधकार्य व्यक्ति को सीखने की नई परिस्थितियों से जूझने का व्यापक दृष्टिकोण प्रदान करता है। वह आपको लगभग शून्य से प्रारम्भ करने का, अपने अज्ञान का सामना करने और सहायता माँगने का, समस्याओं की गुत्थियों को सुलझाने का, कभी-कभी नई तरकीबें निकालने का और कभी कामों को करने के किसी खास तरीके को पूरी तरह त्याग देने का आत्मविश्वास देता है। व्यक्ति सीखता रहता है और नई अवधारणाओं और विचारों का उपयोग करता रहता है। अन्ततः यह पूरी प्रक्रिया आपको भरपूर धैर्य की सौगात दे जाती है।

अपने शोध प्रबन्ध की सफल प्रस्तुति व वकालत के बाद मैंने एक ऐसे विषय पर कार्य करने का निर्णय लिया जिसने मुझे लम्बे समय से परेशान कर रखा था – उन कारकों की पहचान करना जो लोगों को अपने अध्ययन में, विशेष रूप से विज्ञान में, जिसे आम तौर पर कठोर और निर्वैयक्तिक (impersonal) विषय की तरह देखा जाता है, अर्थ ढूँढने में मदद करते हैं। साथ ही, जिस तरह से विज्ञान को सीखा और सिखाया जाता है उसमें मैं शोध करने की संस्कृति के तरीकों का समावेश करना चाहता था।

निर्भय

मैंने स्नातक स्तर के विद्यार्थियों को ज़रूर पढ़ाया था लेकिन मुझे बच्चों के साथ काम करने का कोई अनुभव नहीं था। विद्या वनम् में मैं आठ से बारह साल के

ऐसे बच्चों का शिक्षक था जिन्हें उस स्कूल में पढ़ते हुए चार से पाँच साल हो गए थे। उनमें से अधिकांश को मुझसे बात करने में कोई संकोच नहीं था – उन्होंने मुझसे पूछा कि मैं कौन था, क्या करता था, मेरे माता-पिता कहाँ रहते थे। और फिर, उन्होंने अपने बारे में मुझे ढेर सारी बातें बताईं – उन्हें क्या पसन्द था, उनका सबसे अच्छा दोस्त कौन था और उनके कितने भाई-बहिन थे। मेरी पहली कक्षा में, उस कक्षा के आठ साल के बच्चों ने एकदम अनायास ही मेरे लिए एक समूह नृत्य करने का निर्णय लिया। उन्होंने मुझे अपने बीच सहज महसूस कराने की ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ले ली। उनके बोलने में या चेहरे पर भय का कोई आभास नहीं था। जब भी उन्हें कक्षा के लिए कोई रोचक या प्रासंगिक बात मिलती तो वे तुरन्त उसे बताते थे। उन्होंने सहज ही मेरा नाम अनीश अण्णा रख दिया।

ध्वनि से अच्छी शुरुआत

मैंने ध्वनि से शुरुआत करने का निर्णय लिया क्योंकि ध्वनि एक ऐसा विषय है जिससे बच्चे आसानी से जुड़ सकते हैं और यह उनके विज्ञान के पाठ्यक्रम के निर्धारित विषय-प्रसंगों की सूची में भी था। मैंने उन्हें एनसीईआरटी, एचबीसीएसई (*स्मॉल साइंस सीरीज़*), एकलव्य के होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम द्वारा तैयार की गई विज्ञान की गतिविधि-आधारित पाठ्यपुस्तकों (*बाल वैज्ञानिक*) के बारे में तथा अरविन्द गुप्ता के कार्य के बारे में बताया। नई-नई युक्तियाँ निकालकर तथा कभी-कभी इन स्रोतों से मिले विचारों को अपने तरीके से उपयोग करते हुए, हमने ध्वनि से सम्बन्धित अनेक अवधारणाओं की छानबीन की।

हमने शुरुआत स्कूल के वातावरण की ध्वनियों का अवलोकन और निरीक्षण करने से की – बहुत गहराई से सुनते हुए हमने उनकी दिशा पहचानी, उनके स्रोत को ढूँढ निकाला और फिर एक ध्वनि मानचित्र तैयार किया। कुछ बच्चों ने अवलोकन का यह अभ्यास अपने घर पर भी दोहराया और तस्वीरों सहित विस्तृत ध्वनि-मानचित्र तैयार किए। एक आठ साल के बच्चे सबरीश ने अपनी सूची में "जब रात को सन्नाटा होता है, तब ट्यूब लाइट से आने वाली आवाज़" तक को शामिल किया।

अगले दिन, हमने नारियल के कठोर बाहरी खोलों पर प्लास्टिक की थैलियाँ बाँधकर बजाने वाले ड्रम तैयार किए। कुछ बच्चों ने इनके भीतर कुछ बीज और

छोटे कंकड़ डाल दिए और इस तरह झुनझुने जैसे बजने वाले ड्रम बनाए। हम इस विचार तक पहुँच सके कि हर ध्वनि के पीछे कोई ऐसी चीज़ होती है जो कम्पन करती है, फिर चाहे वह हमारा गला हो या तबला, गिटार का तार, रबर का छल्ला, पत्ती या कागज़ की बनाई गई सीटी। हमने देखा कि किस तरह एक बोतल में अलग-अलग तलों तक पानी भरने के बाद बोतल के मुँह पर से फूँकने पर निकलने वाली आवाज़ का स्वर-मान (उसका भारी या पतला होना जो उसकी आवृत्ति से जुड़ा हुआ है) बदलता है। एक बार, हमने स्वर-मान के बारे में बात करने के लिए एक बाँसुरी का इस्तेमाल करते हुए उससे अलग-अलग स्वर निकाले। बच्चों को बहुत मज़ा आया और उन्होंने बार-बार गुज़ारिश करके मुझे काफी देर तक बाँसुरी बजाने के लिए मजबूर किया। मुझे यह एहसास हुआ कि जो चीज़ इन बच्चों को पसन्द आ जाती थी वे मन लगाकर उसके पीछे पड़ जाते थे।

चित्र 1: बालटी कला

बालटी कला

अगली कक्षा में मैं पानी से भरी एक बालटी लेकर आया, यह समझाने के लिए कि जिस तरह पानी में लहरें फैलती हुई यात्रा करती प्रतीत होती हैं* उसी तरह किसी वस्तु से निकलने वाले कम्पन हवा में फैलते हुए यात्रा करते हैं और हमें ध्वनि सुनाई देती है।

उस दिन, सुबह की रोशनी बालटी में भरे पानी की सतह पर पड़ रही थी और उसका प्रतिबिम्ब कमरे की छत पर पड़ रहा था। बालटी को सिर्फ हल्का-सा

*असल में पानी में कंकड़ डालने पर पैदा होने वाली लहरें फैलती नहीं हैं। एक छोटा-सा लकड़ी या कागज़ का टुकड़ा पानी की सतह पर रख के, फिर उसमें लहरें पैदा करके, आप यह देख सकते हैं।

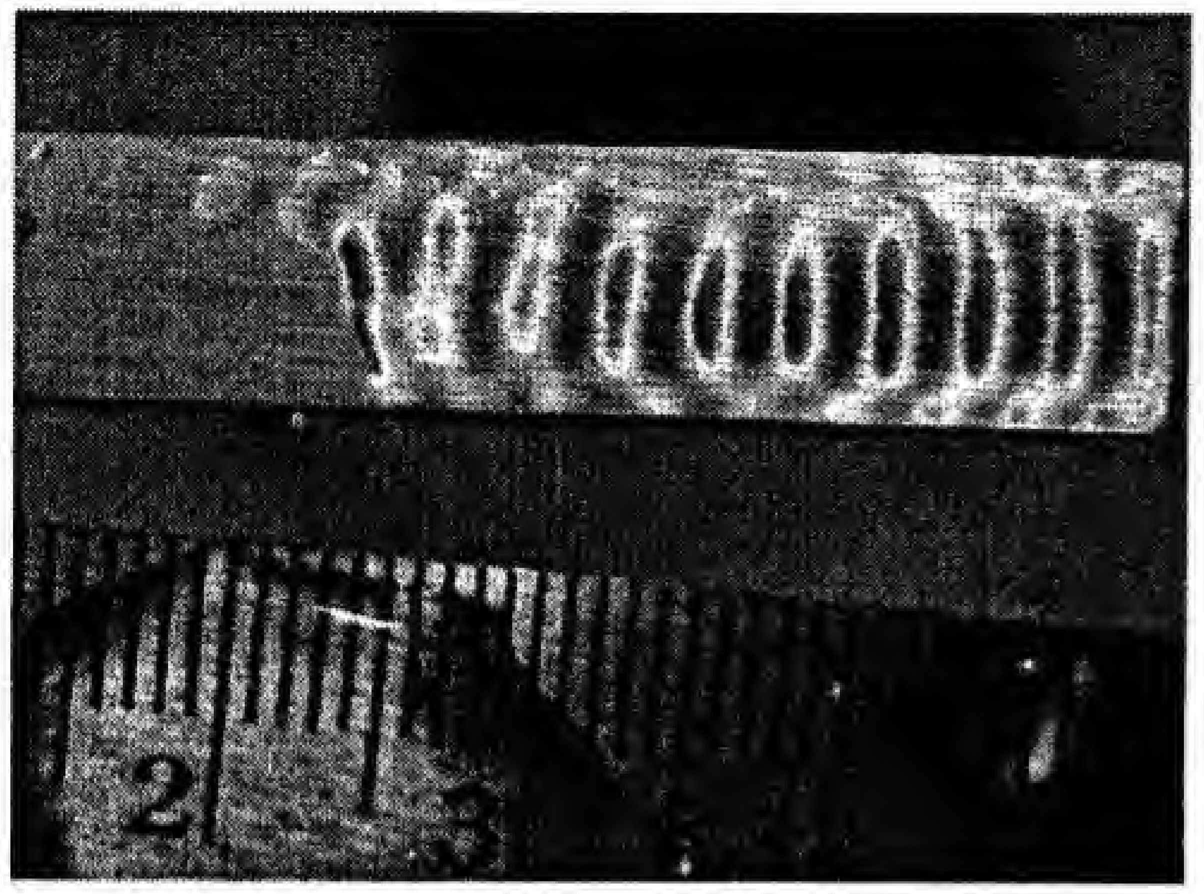

चित्र 2: स्वरित द्विभुज *(ट्यूनिंग फॉर्क)* के ज़रिए सतह की गुरुत्वाकर्षण तरंगों के स्पष्ट दिखाई देते शिखर।

धक्का देने से या मेरे गीले हाथ से बूँदों के उसमें टपकने भर से छत पर झलकने वाले प्रतिबिम्ब में बहुत नाटकीय और चकित करने वाली संरचनाएँ पैदा हो रही थीं। प्रतिबिम्ब के प्रकाशित और छाया वाले हिस्सों में गति करती हुई पानी की लहरें बहुत साफ दिखाई देती थीं और उनको देखकर विस्मय से बच्चों की किलकारियाँ निकल रही थीं। इस चमत्कारी दृश्य का अवलोकन करते हुए और उसको सराहते हुए हमने कुछ समय बिताया और मैंने इस तथ्य पर ज़ोर देने का प्रयास किया कि हम तरंगों को देख रहे थे (चित्र 1)।

स्वर पकड़ना

हमने एक *ट्यूनिंग फॉर्क* के कम्पनों को सुना और अनुभव किया, और उसके एकल स्वर वाले गुंजन को ध्यान से सुनते हुए पकड़ा। वह सभी बच्चों के बीच बड़ा लोकप्रिय खिलौना बन गई और हर कोई उसे किसी मित्र द्वारा कान के पास लाए जाने पर महसूस होने वाली गुदगुदी का मज़ा लेना चाहता था। उन्होंने उससे विभिन्न चीज़ों – जैसे कि एक प्लास्टिक की थैली, टिफिन का डिब्बा, नारियल के खोल का ड्रम, पेंसिल बॉक्स, कपड़े इत्यादि – को छुआ और इसके कारण उत्प्रेरित कम्पनों से पैदा होने वाली ध्वनि को सुना। एक बच्चे ने उत्प्रेरित कम्पनों का इस प्रकार वर्णन कियाः "जब हम *ट्यूनिंग फॉर्क* को छूते हैं, तो कम्पन हमारे हाथों में प्रवेश कर जाते हैं।"

मैंने सोचा कि यदि हम *ट्यूनिंग फॉर्क* को पानी में लहरें पैदा करते हुए देख सकें तो इससे हवा में ध्वनि की तरंगों के विचार को समझने में आसानी होगी। मैं उसे बालटी में भरे पानी की सतह के नज़दीक ले गया और हमने देखा कि उसके कारण निर्मित तरंगें एक-दूसरे के बहुत नज़दीक थीं। छत पर प्रक्षेपित

प्रतिबिम्ब के कारण इसे देख पाना आसान था, पर फिर भी वह उतना स्पष्ट नहीं था जितनी मैंने अपेक्षा की थी। वास्तव में, जिस तरह *ट्यूनिंग फॉर्क* पानी उछाल रही थी बच्चे उससे अधिक आकर्षित थे।

एक 12 साल के बच्चे ने, जिसका नाम प्रसन्ना वेंकटेश था, *ट्यूनिंग फॉर्क* ले ली और जब बाकी कक्षा आगे की चर्चा में लग गई, वह *फॉर्क* से पानी छपछपाने में लगा रहा। लगभग आधे घण्टे बाद प्रसन्ना ने मुझे पुकारकर कहा, "अण्णा, मैं आपको यह दिखाना चाहता हूँ।" वह बालटी के बगल में बैठा था और उसके चारों ओर पानी बिखरा हुआ था। उसने रबर की एक हथौड़ी से *ट्यूनिंग फॉर्क* पर चोट की और उसको पानी में डुबोने की बजाय, पानी को उसके ऊपर उँड़ेला! फिर मैंने जो देखा उस पर मैं यकीन नहीं कर पा रहा था। जब तक *फॉर्क* का कम्पन जारी रहा इस पानी पर अत्यन्त जटिल प्रतीत होने वाली संरचनाएँ दिखाई देती रहीं।

प्रसन्ना *ट्यूनिंग फॉर्क* पर गिरे पानी की सतह पर गुरुत्वाकर्षण तरंगों को देख रहा था। *ट्यूनिंग फॉर्क* में ही हो रहे कम्पन इन तरंगों को संचालित करते हैं। तीव्र शटर गति पर ली गई एक फोटो ने सतह की इन गुरुत्वाकर्षण तरंगों को प्रकट किया (चित्र 2)।

हर साल, अनेकों विद्यार्थी पानी से आंशिक रूप से भरी हुई एक नली के मुँह पर कम्पन करती हुई एक *ट्यूनिंग फॉर्क* पकड़े अनुकम्पन (resonance) खोजने का प्रयोग करते हैं। लेकिन अनुकम्पन की खोज के 300 वर्ष बाद तक, क्या किसी ने भी *ट्यूनिंग फॉर्क* की सतह पर पानी उड़ेलने के सीधे-सरल तरीके के बारे में नहीं सोचा था? या फिर विद्यार्थियों से यह अपेक्षा नहीं होती है?

क्या हम ध्वनि को देख सकते हैं?

एक दिन मैं कक्षा में ज़ोर से बोलते हुए सोच रहा था कि निश्चित रूप से हम ध्वनि को सुन तो सकते हैं, पर क्या कोई ऐसा तरीका है कि हम उसे देख सकें? किसी को धुआँ पैदा करने का खयाल आया तो हमने कुछ कागज़ जलाए और उससे निकलने वाले धुएँ में कम्पन करती हुई *ट्यूनिंग फॉर्क* को रखा। लेकिन *ट्यूनिंग फॉर्क* के कम्पन शायद इतने ज़्यादा कमज़ोर थे कि वे कोई दर्शनीय प्रभाव नहीं पैदा कर सके। हमें धुएँ में गिटार के तार को छेड़ने का खयाल नहीं आया जिसका प्रभाव हो सकता है कि देखा जा सकता। फिर अनायास ही बारह साल के ऋषिकेश को एक अद्भुत बात सूझी (उसका यूरेका क्षण!) और उसने

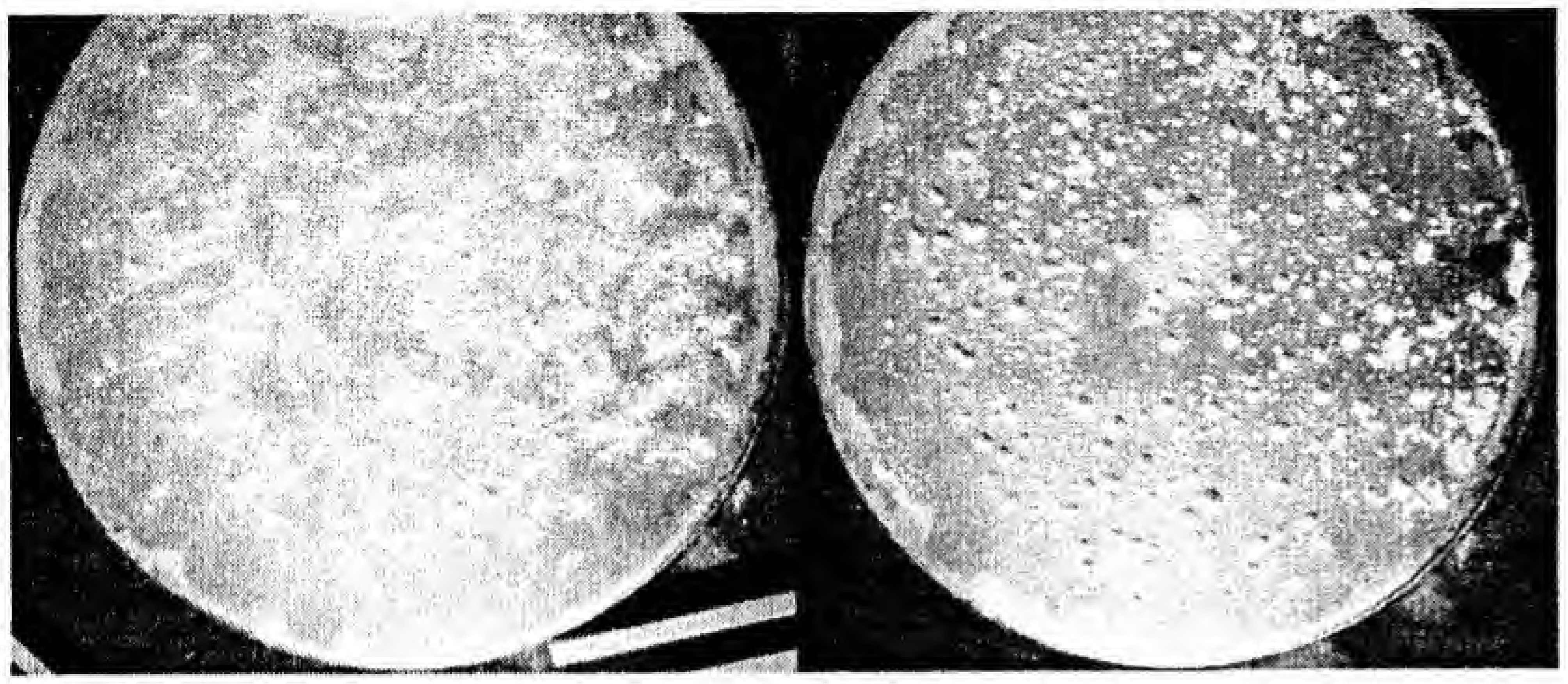

चित्र 3: तितली जैसी आकृति दिखती हैं।

चिल्लाकर कहा, "अण्णा, पाउडर! पाउडर!" हमने कुछ टैल्कम पाउडर मँगाया और उसे एक उल्टे रखे हुए गिलास पर फैलाया। फिर हमने कम्पन करती हुई *ट्यूनिंग फॉर्क* से उसे छुआ, लेकिन गिलास बहुत वज़नी था और इसलिए कुछ नहीं हुआ। फिर हमने एक स्टील प्लेट ली और उस पर पाउडर फैलाकर ऐसा ही किया। इस बार जब भी हम प्लेट से *ट्यूनिंग फॉर्क* को छुआते तो हर बार पाउडर अपनी जगह से खिसकता था। लगातार ऐसा करने पर, पाउडर ने प्लेट की सतह पर छोटी और बड़ी ढेरियों में इकट्ठा होकर एक विशेष संरचना निर्मित कर ली, और बारह वर्ष के पवन कुमार ने गौर करके कहा कि वह एक तितली जैसी दिखती थी।

यह *क्लाडनी* संरचनाओं – जिनमें हम गोल सीमा रेखा से परावर्तित होने के कारण बनने वाली द्वि-आयामी खड़ी तरंगों (standing waves) के प्रस्पंद (antinode) को अलग-अलग आकारों की ढेरियों की स्थिति का निरीक्षण करके खोज सकते थे – को हासिल करने का आसान तरीका था। बाद में हमने एक तबले की जोड़ी (दायाँ एवं डिग्गा) पर पाउडर डाला और फिर उसकी झिल्ली में होने वाले कम्पनों से पाउडर की ढेरियों को बनते हुए देखा (चित्र 3)। वह आकृति भी तितली जैसी दिखती है!

इसके बाद कुछ दिन बीत गए। फिर प्रसन्ना ने ऋषिकेश की सूझ को अपनाते हुए एक कम्पन करती हुई *ट्यूनिंग फॉर्क* पर सीधे टैल्कम पाउडर डाला। पाउडर ढेरियों में इकट्ठा हो गया जो थरथराती हुई खिसककर *ट्यूनिंग फॉर्क* की मध्य रेखा पर आ गईं। यहाँ इस बात पर गौर करना उल्लेखनीय है कि

माइकल फैराडे ने इसी प्रयोग को *लाइकोपोडियम* पाउडर का उपयोग करते हुए 1830 के दशक में किया था और यह वर्तमान शोध का विषय भी है। जर्ल वॉकर के *द फ्लाइंग सर्कस ऑफ फिज़िक्स* से लिया गया यह अंश इस सन्दर्भ में बहुत शिक्षाप्रद है: "*धूल, रेत से भी हल्की होने की वजह से, उस हवा से प्रभावित होती है जो कम्पन के कारण प्लेट के ठीक ऊपर शुरू हो जाती है। प्लेट के बिलकुल पास में हवा एक नोड से बगल के ऐंटी-नोड तक चलकर फिर ऊपर प्लेट से दूर हट जाती है। इस तरह, हवा ऊपर बहने से पहले धूल को नोड से बगल के ऐंटी-नोड तक ले जाकर जमा देती है।*"

गुरुत्वाकर्षण के खिलाफ गति

प्रसन्ना ने पाया कि यदि हम *ट्यूनिंग फॉर्क* को थोड़ा-सा (छोटे-छोटे कोणों पर) झुकाएँ, तब भी पाउडर की ढेरियाँ गुरुत्वाकर्षण के खिलाफ धीरे-धीरे *ट्यूनिंग फॉर्क* पर ऊपर की ओर खिसकती रहती हैं (चित्र 4)!

रसायन शास्त्र और कविता

एक बार, जब एक सांस्कृतिक कार्यक्रम की तैयारियाँ चल रही थीं, तो जो बच्चे उसमें भाग नहीं ले रहे थे वे पुस्तकालय में अपना समय बिता रहे थे। उनमें से कुछ विज्ञान के कक्ष में आए और रोमांचित भाव से मुझे एक किताब में कुछ दिखाकर बोले कि वे उस प्रयोग को करने की कोशिश करना चाहते थे।

गुरुत्वाकर्षण के खिलाफ पाउडर के ढेरों की गति

इसका एक सम्भावित कारण यह हो सकता है कि *ट्यूनिंग फॉर्क* का खुला मुक्त हिस्सा, जो *फॉर्क* के बाकी हिस्से की तुलना में (प्राइमरी वाइब्रेशनल मोड में) अधिक आयाम से गति करता है, ऊर्जा की एक उच्चतर अवस्था को निरूपित करता है, और मुक्त छोर पर पाउडर की ऊर्जा तथा स्थिर छोर पर पाउडर की ऊर्जा का अन्तर उनकी गुरुत्वाकर्षण स्थितिज ऊर्जाओं के अन्तर से अधिक है (चित्र 4)।

दूसरी ओर, *ट्यूनिंग फॉर्क* की बाहरी सीमाओं पर हवा की प्रेरित धाराओं (acoustic streaming) की गति जो पाउडर की ढेरियों की गति के रूप में प्रकट होती है, वह हो सकता है कि झुकाव रेखा पर पड़ने वाले पाउडर के भार के क्षीण भाग की तुलना में कहीं ज़्यादा शक्तिशाली प्रभाव डालती हो, क्योंकि झुकाव का कोण खुद बहुत कम होता है।

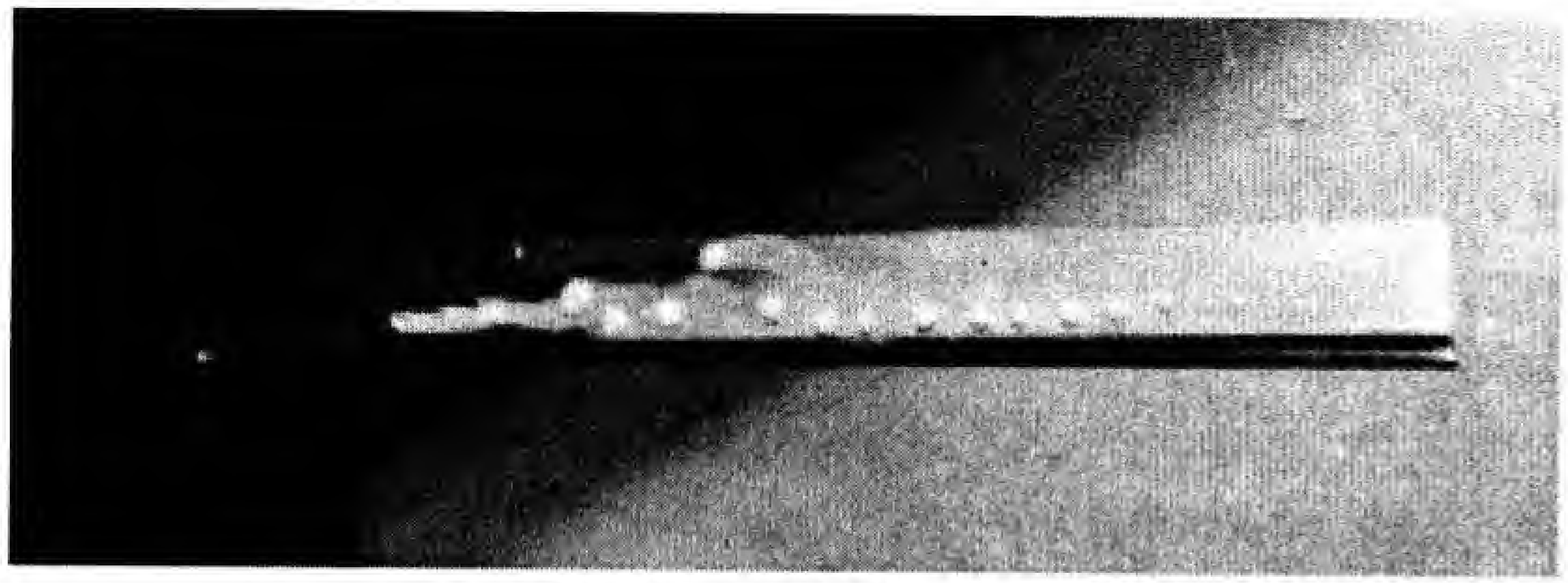

चित्र 4: *ट्यूनिंग फॉर्क* पर पाउडर की ढेरियाँ

बच्चे एक बीकर में कुछ पानी, बैटरियाँ, एक छोटा बिजली का बल्ब, कुछ नमक और ताँबे के तार ले आए। वे यह प्रयोग करके देखना चाहते थे कि नमकीन पानी सामान्य पानी की तुलना में अधिक विद्युत सुचालक होता है। हम सोचते रहे कि पानी में इलेक्ट्रोड का काम करने के लिए क्या डुबोया जाए। फिर मैंने कुछ पेपर क्लिपों को सीधा किया और ताँबे के तारों को उन पर लपेट दिया। पानी में कुछ नमक मिलाने के बाद हमने एक इलेक्ट्रोड के पास कुछ छोटे-छोटे बुलबुले बनते हुए देखे लेकिन बल्ब नहीं जला। दो बच्चों ने दो बैटरियों को श्रृंखला क्रम में यह कारण बताते हुए जोड़ दिया कि टॉर्च में रोशनी पाने के लिए दो बैटरियों की ज़रूरत पड़ती है, और तब बल्ब बहुत धीमे-से टिमटिमाया। अब कुछ बच्चों ने पानी में और नमक मिलाया। बल्ब और तेज़ी से चमकने लगा तथा और अधिक बुलबुले भी दिखाई दिए। उसी समय पवन कुमार बोल पड़ा, "अण्णा, यह एक जलप्रपात जैसा दिखता है, लेकिन उल्टे जलप्रपात-सा!" (चित्र 5)।

जिस बात की जाँच करने के लिए प्रयोग शुरू किया था, हम उसकी पुष्टि कर चुके थे, और मैं उम्मीद कर रहा था कि बच्चे अब सब चीज़ें समेटकर उसे समाप्त करेंगे। लेकिन यह उनके लिए काफी नहीं था। वे उसमें पूरी तरह डूब गए थे। कोई रसोईघर से और नमक ले आया और उसे पानी में डालकर मिलाता रहा, और वे निरीक्षण करते रहे कि बुलबुले और ज़ोर से पैदा हो रहे थे। कुछ समय बाद नमक का वह घोल संतृप्त हो गया, और उन्होंने उसमें नमक डालना बन्द कर दिया। फिर वह घोल रंग बदलने लगा! ज़ोरदार किलकारियों, विस्मित आवाज़ों और 'जादुई पानी' की पुकारों के बीच, हमने देखा कि पानी पहले धुँधला पीला हुआ, फिर हल्का-सा जैतूनी हरे रंग का, और फिर गहरे हरे रंग का (वह धनोद – anode– से निकलने वाला अवक्षेप था जो

धीरे-धीरे तली में बैठ गया – चित्र 6)। अगली सुबह हमने बीकर की तली में नारंगी-भूरी गाद जमी देखी जिसके ऊपर अपेक्षाकृत साफ पानी था, और धनोद काफी बुरी तरह गल चुका था।

ऋणाग्र (cathode) पर बुलबुलों के रूप में हाइड्रोजन गैस मुक्त होती है (इसकी पुष्टि उसके ऊपर जलती हुई माचिस की तीली लाने पर होने वाली 'फट' की आवाज़ से हुई) और फैरस आयन पैदा होते हैं (जिनका ऑक्सीकरण होने से वे फैरिक में बदल जाते हैं)। यह क्रिया पेपर क्लिप धनोद के लौह परमाणुओं के नमक के पानी में प्रवेश करने के कारण होती है।

प्रकाश और आवेश

हमने यह दिखाने के लिए कि प्रकाश एक सीधी रेखा में गति करता है, एक पिनहोल (सूक्ष्म-छिद्र) कैमरा बनाया। उसके बाद, हमने एक कागज़ को पहले तेल में डुबोकर और फिर सुखाकर, उसे एक पारभासी पर्दे की तरह इस्तेमाल करके, उस पर एक जलती हुई मोमबत्ती की उलटी छवि देखी। कुछ बच्चों ने इसे कागज़ में कई और छेद करके आज़माया और पर्दे पर एक मोमबत्ती की कई छवियाँ देखीं, जैसा कि फिल्मों में कभी-कभी विशेष प्रभाव पैदा करने के लिए किया जाता है। हमने (खाना लपेटने वाली) एल्यूमिनियम की फॉइल से एक छोटा-सा टुकड़ा लेकर एक विद्युतदर्शी (electroscope) बनाया, उसके एक किनारे को ताँबे के तार से बने एक हुक पर फँसाकर उसे एक बीकर में लटकाया। फिर जब हम तेज़ी से रगड़ी गई कंघी को उस काँटे के पास लाए तो हमने एल्यूमिनियम की पन्नी की तहों को खुलकर फैलते हुए देखा। पुरानी

चित्र 5: उल्टा जलप्रपात

चित्र 6: जादुई पानी

सीमेंट की थैलियों से निकाले गए रेशों का इस्तेमाल करते हुए (जो श्री राजीव वर्तक की सूझ थी) हम स्थितिज आवेशों (static charges) के बारे में काफी कुछ समझ सके। ऐसे कई रेशों को एक छोर पर इकट्ठा पकड़कर खींचने से रगड़ने पर वे एक-दूसरे से दूर हटते हुए दिखाई दिए – जो समान आवेशों का विकर्षण दर्शाता है। एक घिसा गया रेशा दूसरे 'न घिसे गए' रेशे के प्रति आकर्षित होगा क्योंकि वह उस पर आवेशों को प्रेरित करता है। हमारे हाथ भी घिसे गए रेशों के प्रति आकर्षित होते हैं और इसलिए वे रेशे हमारे शरीर से चिपक जाते हैं, जैसे कि हम कोई विशाल मकड़ी या ऑक्टोपस बन गए हों।

दैनिक जीवन में विज्ञान

इसी बीच, हम अन्य विषयों की ओर बढ़ गए थे। हमने पत्तियाँ, बीज, फूल तथा माचिस की डिबियों में रखे गए जुगनू एकत्रित किए, और एक बार एक नन्हीं छिपकली को एक काँच के गिलास में बन्द कर लिया। एक बच्चा ऐसे बीज ले आया जो 'हैलीकॉप्टर' कहलाते थे, और उसने मुझे दिखाया कि एक मुट्ठी भर बीजों को हवा में उछालने और फिर हैलीकॉप्टर की तरह उनके धीरे-धीरे नीचे आने का दृश्य कितना रोमांचक होता है। एक दूसरा बच्चा *सूडकटी* (जिसका तमिल में शाब्दिक अर्थ 'गरम बीज' होता है) नाम का एक चमकदार बीज ले आया जो फर्श पर घिसने पर वाकई में बहुत गर्म हो जाता है। सुधर्मा (उम्र आठ साल) ने मुझे दिखाया कि एक खास पौधे के तने से एक पत्ती तोड़कर, पत्ती और तने के बीच रिसने वाले रस पर फूँक मार कर, कैसे एक बड़ा बुलबुला बनाया जाता है।

बच्चों के नज़रिए और विज्ञान

स्नातकोत्तर पढ़ाई और शोध कार्य के कठिन परिश्रम से गुज़र चुके होने के कारण मुझे उम्मीद नहीं थी कि स्कूली बच्चों के पास मुझे सिखाने के लिए कुछ होगा। मैं यह धारणा लेकर आया था कि मैं विज्ञान पढ़ाने के ढंग में शोध करने के कुछ पहलुओं का समावेश करने का प्रयास करूँगा। पर यह देखकर कि बच्चे अनायास असामान्य क्रियाकलापों से सामना होने पर उनकी छानबीन करने में समर्थ थे, मेरी सारी धारणाएँ उलट-पलट और ऊपर-नीचे हो गईं। अब पीछे मुड़कर देखता हूँ तो महसूस होता है कि यहं सिर्फ संयोग नहीं था कि ऐसे अनेक सेवामुक्त प्रोफेसरों में, जिनके सुन्दर कार्य के कारण मैं उनका प्रशंसक रहा हूँ, शोध करने के प्रति 'बच्चों जैसा' नटखट व खेलप्रिय दृष्टिकोण दिखाई देता है।

शायद बच्चे अहंकार-शून्य सहज वैज्ञानिक होते हैं। हालाँकि वे अपनी हासिल की गई जानकारियों को वैज्ञानिक शब्दावली में नहीं बता सकते, पर तब भी उनमें अच्छा शोध-कार्य करने के लिए आवश्यक अनेक गुण होते हैं। वे पार्श्विक तरीके से (laterally) सोच सकते हैं और तथ्यों के बीच सम्बन्ध खोज सकते हैं। वे धैर्यवान और लगनशील होते हैं, वे न तो असफलता से हताश होते हैं और न ही उससे डरते हैं। वे चीज़ों को करते हुए भी सोचने का काम जारी रख सकते हैं और अगला तर्कसंगत कदम उठा सकते हैं। वे तरकीबें भिड़ा सकते हैं, और पूरी तरह सचेत होकर चीज़ों को उसी तरह देख सकते हैं जैसी वे होती हैं, मानो वे उनके बारे में सब कुछ जानते हों। उनके मन में ज्ञान के खण्डों में बँटी हुई धारणा नहीं होती, जिसके कारण वे विज्ञान और कविता तक का एकीकरण कर सकते हैं, जैसा कि पवन कुमार ने किया।

कभी-कभी बच्चे लगभग स्वतंत्र रूप से पेचीदा वैज्ञानिक परिघटनाओं का पता करते हैं, और ऐसा कभी-कभी संयोग से भी हो जाता है। इस कारण मैं सोचता हूँ कि क्या विज्ञान भी कला की तरह सीखना चाहिए जहाँ बच्चों से कुछ नया करने की अपेक्षा की जाती है, लेकिन यह ज़रूरी नहीं है कि 'कुछ नया' हर बार एक खोज हो। यह भले ही एक नई समझ या नई व्याख्या हो, नया अवलोकन या किसी परिघटना को दूसरे कारकों से जोड़कर उसे समझने का अलग-सा नज़रिया हो।

अब मुझे अपनी मूल आधार-मान्यता पर ही सन्देह होता है। हो सकता है कि विज्ञान के शिक्षण का विज्ञान करने की वास्तविक प्रक्रिया (अर्थात् शोध करने) के साथ कृत्रिम रूप से तालमेल बनाने की कोई ज़रूरत ही न हो। एक तरह से, बच्चों में पहले से ही एक नैसर्गिक वैज्ञानिकता होती है, और उसे न पहचान पाना और न स्वीकार कर पाना वास्तव में वयस्क लोगों की समस्या होती है। दरअसल, उनके कभी-कभी संयोगवश और कभी जानबूझकर किए गए छानबीन के कार्य सीखने के नए अवसर उपलब्ध कराते हैं। हमें बच्चों और उनकी वैज्ञानिक क्षमताओं को तुच्छ समझते हुए उनके प्रति अपने कृपा करने वाले रवैए को छोड़ने की ज़रूरत है, और इसकी बजाय उन्हें संजीदगी से लेने और उनके खुलेपन को सराह सकने के लिए खुद अपने मन को खुला रखने की ज़रूरत है। विज्ञान की कक्षा में शिक्षकों तथा बच्चों के बीच एक खरा संवाद सीखने को वैज्ञानिक चेतना के प्रति अधिक सच्चा और सभी के लिए अधिक सार्थक बना सकता है।

चुनौतियाँ और आशा

शिक्षकों के ऊपर दिए गए पाठ्यक्रम को निर्धारित समय में पूरा करने का जो ज़बरदस्त दबाव होता है, उसका मुझे एहसास है। ऊपर से, शहरी भारतीय समाज पढ़ाने के व्यवसाय को व्यावसायिक असफलता (अन्य किसी काम के लायक न होने) का संकेत मानते हुए, उसे नीची नज़र से देखता है। स्कूल के शिक्षकों को लगातार सीखते रहने का वातावरण मिलना दुर्लभ होता है क्योंकि उनके पेशेवर विकास और बौद्धिक विकास के अवसर बहुत ही कम होते हैं।

यह बात सभी मानते हैं कि विज्ञान की स्कूली शिक्षा में खामियाँ हैं। पारम्परिक दृष्टिकोण विज्ञान को पढ़ाई के ऐसे विषय के रूप में देखता है जो ठोस तथ्यों पर आधारित होता है, और इन तथ्यों का परीक्षण करने या उनका उपयोग करने की बात तो छोड़िए, उसमें यह खोजने की भी कोई सम्भावना नहीं होती कि पहले-पहल इन तथ्यों को किस तरह जाना गया। विज्ञान की कक्षाओं में वैज्ञानिक पद्धति एक अनाथ की तरह छोड़ दी गई धारणा होती है। यहाँ तक कि गतिविधि-आधारित विज्ञान भी एक चुनौती होती है क्योंकि इन गतिविधियों को लिखित परीक्षाओं की विज्ञान की भाषा से निरन्तर जोड़ते रहने की ज़रूरत होती है।

ऐसी कठिन मौजूदा परिस्थिति में, सम्भव है कि बच्चे स्वयं ही हमें इससे बाहर निकलने का मार्ग ढूँढने में मदद कर सकें, बशर्ते कि हम उनकी बातों पर ध्यान देने को तैयार हों।

लेखक आईआईएससी, बंगलुरु, में भौतिकी के (स्नातक शिक्षा कार्यक्रम में) शिक्षक हैं। उनसे anish@physics.iisc.ernet.in पर सम्पर्क किया जा सकता है। अँग्रेज़ी से अनुवाद सत्येन्द्र त्रिपाठी ने किया है।

निष्कर्ष

आज के दौर में जब हम विज्ञान और उसकी शिक्षा की बात करते हैं तो हम उन सरल धारणाओं तक सीमित नहीं रह सकते जिनके सहारे हमें सोचने की आदत रही है। रटन्त विद्या के विरोध से यह सन्देश पहुँचा है कि विज्ञान का मतलब जानकारी रटना नहीं बल्कि अवलोकन करना, प्रयोग करना और उनके आधार पर तर्कसंगत निष्कर्ष पर पहुँचना है। पर विज्ञान केवल इतना भर नहीं है। शायद विज्ञान में इससे भी ज़्यादा ज़रूरी है दुनिया के बारे में विचार करना, सिद्धान्त गढ़ना और उनको जाँचना; उन सिद्धान्तों व मॉडलों को खोजना जो वास्तविकता के ज़्यादा से ज़्यादा करीब आते हों। विज्ञान का मतलब है उन सिद्धान्तों को बदलना या छोड़ देना जब वे कुछ खास हालातों में अपेक्षा अनुसार सही परिणाम न देते हों (जिसमें यह भी निहित है कि कुछ और हालातों में वे सही परिणाम देते भी रह सकते हैं)। तो विज्ञान और विज्ञान की विधि सीखने का मतलब है यह सीखना कि दिमागी घोड़े कैसे दौड़ाएँ और उन खयालों की जाँच कैसे करें, चर्चाएँ और बहसें कैसे करें, उनसे किसी सहमति तक कैसे पहुँचें; और इस बात के लिए मानसिक रूप से तैयार रहें कि जब कोई नई जानकारी या खोज सामने आए तो ज़रूरत पड़ने पर इस सहमति को बदल दें।

हम यह सब करना कैसे सीख सकते हैं, इसके बारे में कई सुझाव हमारे सामने आते हैं। जैसे, मनुष्य के बदलते विचारों की कहानी हमें विज्ञान सीखने का मौका दे सकती है। इस कहानी में हमें अपने ही मन के अन्दर दबे-छिपे कई खयाल पहचान में आने लगेंगे। हमें पता चलेगा कि अतीत के विचारकों के मन में हमारे जैसे कई ख्याल भी हुआ करते थे। यह जानकर अपने विचारों के बारे में हमारे मन का संकोच शायद हल्का होने लगे। तब हम दुनिया के बारे में अपने मन में बने सिद्धान्तों और विचारों को भी सामने लाएँ और दूसरों के साथ उन पर चर्चा करें। और, विज्ञान के इतिहास की रोशनी में, हम अपने विचारों को परखने, त्यागने, बदलने का सिलसिला आगे बढ़ाने लगें। इस तरह की गई विज्ञान की पढ़ाई आजकल की पढ़ाई से यकीनन बेहतर होगी जिसमें जीती-जागती कोशिशों को समझने की बजाय हमें कई बातों को नीरस तरीके से याद करवाया जाता है या फिर उन बातों को केवल सिद्ध करने के लिए गतिविधि व प्रयोग करवाए जाते हैं।

लेकिन बच्चों को वैज्ञानिक विचारों के विकास की कहानी में रुचि लेने के लिए प्रेरित करने वाला शैक्षिक वातावरण कैसे बनाया जा सकता है? ज़ाहिर है कि हमें एक नए प्रकार के विज्ञान लेखन को प्रोत्साहित करना होगा और उसके साथ संगत करने वाली गतिविधियों और परियोजना कार्यों का निर्माण करना होगा। सामग्री व चुनौती की रोचकता एक सही शैक्षिक माहौल बनाती है। पर क्या यह बच्चे को उद्देश्यपूर्णता का एहसास दिलाने के लिए काफी है? जॉन ड्यूई के विचार में उत्पादक काम, खेल, कला और समुदाय व आस-पड़ोस के मुद्दों के साथ संलग्न होने से बच्चे भौतिक और सामाजिक बातों का अनुभव लेते हैं और उनके मन में सवाल और जिज्ञासाएँ जन्म लेती रहती हैं। अपने लिए सार्थक व उद्देश्यपूर्ण बने सवालों और विचारों के सन्दर्भ में मनुष्य के विचारों के इतिहास से जुड़ना उनके लिए सहज होता है। ज़ाहिर है कि जिस तरह बच्चे अपने भौतिक व सामाजिक अनुभव से जुड़े सवालों में रुचि लेंगे, वैसी रुचि वे उन अमूर्त अवधारणाओं और परिभाषाओं में नहीं लेगें जिनका उपयोग विज्ञान के विशेषज्ञों द्वारा किया जाता है। बल्कि काम, खेल, कला और सामुदायिक प्रयासों में भाग लेकर और विज्ञान के इतिहास की कहानी का परिचय पाकर वे भविष्य में ज़्यादा अच्छे वैज्ञानिक बनने के लिए तैयार हो सकते हैं। शिक्षा दर्शन का यह तर्क विज्ञान शिक्षा की हमारी सोच को और अधिक गहरा बनाने में मदद करता है। हमें विज्ञान शिक्षा के सुधार को अलग-थलग सम्बोधित करने की बजाय स्कूलों की समूची कार्य प्रणाली के रूपान्तरण के साथ सम्बोधित करना चाहिए।

हाल में इंग्लैंड में शुरू की गई एक परियोजना ने विज्ञान, कला और लेखन को जोड़ने का बीड़ा उठाया है जिसके परिणाम बहुत उत्साहजनक हैं। अब 'सॉ' नामक यह परियोजना कई और देशों में शुरू भी की जा रही है। अमरीका में लोकतांत्रिक विद्यालयों के आन्दोलन ने समुदाय व दैनिक जीवन से जुड़े मुद्दों पर की गई परियोजनाओं को सीखने के केन्द्र में लाने की कोशिश की है। भारत में एनसीईआरटी के 2005 के एनसीएफ के तहत विज्ञान शिक्षा और कार्य एवं शिक्षा से जुड़े सुझावों ने परिवेश और समुदाय से जुड़ाव बनाने पर ज़ोर दिया है। विवेचनात्मक शिक्षाशास्त्र ने दिखाया है कि एक विशेष तरह की विषयवस्तु के प्रभुत्व पर सवाल उठाना ज़रूरी है क्योंकि यह असमानता को बढ़ाने में मदद करती है। समाज में समानता और लोकतंत्र को गहरा करने के लिए कई लोगों के ज्ञान को बच्चों की परवरिश और शिक्षा में उपयोग करना होगा। आज शिक्षा का सम्बन्ध केवल ज्ञान की एक विशेष निधि को एक हाथ से दूसरे हाथ तक पहुँचाने से नहीं है। बल्कि शिक्षा का सम्बन्ध इस बात से भी है कि समाज में लोकतांत्रिक सम्बन्धों को बढ़ाया जा रहा है या घटाया जा रहा है।

लोकतांत्रीकरण के संघर्षों में स्कूल की भूमिका नए रूप में पहचानी जा रही है। स्कूलों को ज्ञान प्राप्त करने के लोकतांत्रिक समुदाय की तरह देखना ज़रूरी है जिसमें सब ही सीखते हैं, जिसमें शिक्षक भी शामिल हैं और सभी तरह के परिवारों से आए विद्यार्थी भी।

ये सारी बातें बहुत आदर्श और दार्शनिक जान पड़ती हैं, पर सवाल यह है कि आज के समय में (या कभी भी) ये व्यावहारिक हैं या नहीं। हमने अलग-अलग जगहों में हुए कुछ आधुनिक शैक्षिक प्रयोगों पर नज़र डाली है ताकि हम इस अहम सवाल पर ज़मीनी अनुभव से सीखते हुए विचार कर सकें। 1947 के बाद भारत में महात्मा गाँधी की प्रेरणा से विकसित नई तालीम और 1917 की क्रान्ति के बाद सोवियत रूस में आज़माया गया श्रम आधारित पॉलिटेक्निक पाठ्यक्रम हमें यह दिखाते हैं कि किताबी ज्ञान से परे जाकर शिक्षा का आयोजन कैसे हो सकता है। दूसरी तरफ वे यह भी दिखाते हैं कि आधुनिक राष्ट्र-राज्य और अर्थव्यवस्था के दबावों को सम्हालना कितना विकट हो सकता है। यह निहायत ज़रूरी है कि हम शिक्षा पर नकारात्मक असर डालने वाली सामाजिक ताकतों को समझें और लोकतांत्रिक व्यवस्था को गहरा करने के पक्ष में समर्थन जुटाएँ।

बहरहाल, तमाम बाधाओं के बावजूद कई शिक्षक अपने दायरे में बच्चों के लिए और बच्चों के साथ बहुत सुन्दर काम करते हैं। यही नहीं, वे अपने अनुभवों पर गौर भी करते हैं और उसकी खूबसूरती को दूसरों के साथ बाँटने का प्रयास करते हैं। ऐसे चिन्तनशील, प्रयोगशील और उत्साही शिक्षकों की संख्या भले ही कम न हो, उनके लेखन की तादाद बेशक बहुत कम लगती है। इस किताब में दिए उदाहरण थोड़े से हैं, पर वे ऐसे शैक्षिक लेखन की अपार और विविध सम्भावनाओं को पेश करते हैं। सृजन, चिन्तन और अभिव्यक्ति की ऐसी सम्भावनाएँ सभी शिक्षकों व बच्चों को मिलनी चाहिए। साथ ही उन्हें विश्व भर के नए प्रयोगों व विचारों से समृद्ध होने के अवसर भी मिलने चाहिए।

शिक्षा के स्वरूप में बुनियादी बदलाव सशक्त शिक्षकों की कोशिश से ही आ सकता है। पाठ्यक्रम और पाठ्यसामग्री का विवेचनात्मक विश्लेषण उनके ही हाथों सार्थकता पा सकता है। हर विद्यार्थी के अनुभव व मनस्थिति के साथ संगत करते हुए उनके सीखने को आगे ले जाना भी ऐसे शिक्षकों के विवेक और उनकी पहल से ही साकार हो सकता है। इसके लिए शिक्षकों में जिस स्वतंत्रता और आत्मविश्वास का विकास होना चाहिए वह प्रशासन और शिक्षक-शिक्षा की वर्तमान व्यवस्था सम्भव नहीं बनाती। इन दोनों तंत्रों में बहुआयामी बदलाव लाने की ज़रूरत है।